शिखण्डी

(22 मात्रिक)

परित:[1] घेरे कौरव पाण्डव भूभृत[2] थे ।
शरशय्या पर कुरू ज्येष्ठ[3] व्यथा संवृत थे ॥
संकेत किया नर हरि को पास बुलाया ।
कृप, द्रोण, सुयोधन को समीप बैठाया ॥1॥

फिर कहा शिखण्डी कहां छिपा बैठा है ।
क्या अब भी वह मुझसे मन में ऐंठा है ॥
आहूत करो बातें उससे करनी हैं ।
उर ग्रंथि खोलनी और व्यथा हरनी है ॥2॥

आया पर वीर शिखण्डी का नत सिर था ।
था गात्र प्रकम्पित चित्त बहुत अस्थिर था ॥
बोले कुरू हंसकर आज हुआ प्रण पूरा ।
जो जन्मों से था स्वप्न विशेष अधूरा ॥3॥

अब तो हो तुष्ट व्यथा मन से सब गत है ।
भूलो वह अरतिद[4] कथा अतीत विगत है ॥
अब रोष न मुझ पर करो दोष था मेरा ।
करना था असु[5] से भी ऋणशोधन[6] तेरा ॥4॥

करके प्रणाम वह एक ओर जा बैठा ।
निज आर्द्र नयन युग मींच विगत में पैठा ॥
सब गए, विशादाम्बुधि में था वह मज्जत[7] ।
रण कृत्य कर रहा था जाने क्यों लज्जित ॥5॥

(छन्द विष्णुपद)

स्वयंवर में मुझे धरकर पिता ने पण्य[8] वनितावत ।
पुरस्कृति देय जेता को अलंकृत वस्तु ज्यों संवृत ।
बनाया हन्त! विक्रमजेय निज रूचि हीन प्रतिमा सी ।
यही क्या रीतिलभ्या राजदुहिता हेतु गरिमा थी ॥6॥

1. चारों ओर	4. पीड़ा दायक	7. डूबा
2. राजा	5. प्राण	8. बाजार
3. भीष्म	6. ऋण चुकाना	

निवेदित जब किया था भीष्म से मैं अन्य कामा[1] हूं।
निशापति[2] चित्त नभ का शौभ पति[3] है मैं त्रियामा[4] हूं।
बड़े गांगेय है धर्मज्ञ द्रुत भूदेव[5] गण सहिता।
मुझे भेजा यहां रक्षित पिता ज्यों भेजता दुहिता[6] ॥7॥

गई थी पास प्रियवर के बड़ी लेकर उमंगों को ।
सजाती कल्पना उद्यान लेकर अमित रंगो को ।
न आसन से उठा जो दौड़ता था विकल हो पीछे ।
खड़ा रहता भवन की वाटिका में आम्र तरू नीचे ॥8॥

कभी अपलक मुझे जो देखता था कुंज में छिपकर ।
न डाली दृष्टि भी जब आ गई मैं पास मर मिटकर ।
दिया सम्मान जो कुरू ने नहीं उसकी यहां छाया ।
हृदय में धूम सा घुमड़ा नयन युग नीर भर आया ॥9॥

कहा जब शाल्व से कितनी कठिनता झेल में आयी ।
न कन्या कामना कुरू को उन्हें था ब्याहना भाई ।
हुआ विज्ञात दृढ़ अनुराग तुममें जब उन्हें मेरा ।
किया प्रेषित समादर साथ देकर रक्षिगण घेरा ॥10॥

गयी अभिवंचिता करके तुम्हें यदि शाल्व जय बाला।
न मानो खेद प्रस्तुत है यहां अवदात[7] वर माला।
ग्रथित बहु पुष्प तव रूचिकर मृदुल मम भाव ज्यों सुरभित।
बड़े आयास[8] से पथ में तुम्हारे हेतु यह विरचित॥11॥

कहा तब शाल्व ने गांगेय की तुम हो विजित वनिता[9] ।
हुई वह कर्कषा वाणी तड़ित सी सर्वदिक ध्वनिता ।
नहीं स्वीकार्य हो सकती जिता जो अन्य पौरूष से ।
अरक्षित आज भी में पा रहा हूं भीष्म के रूप[10] से ॥12॥

1. दूसरे को चाहने वाली	6. पुत्री
2. चन्द्रमा	7. शुभ्र, अम्लान
3. सौभ विमान का स्वामी शाल्व	8. प्रयास
4. रात्रि	9. स्त्री
5. ब्राह्मण	10. क्रोध

हुई उर मूल[1] तक प्रमथित व्यथित अनुराग की क्षति से ।
लगी कहने करूण हो काशिदुहिता[2] शाल्व दुर्मति से ।
सभी भूले पुरा[3] अनुराग मुझको मानकर दोषी ।
करो मत शत्रुता उर से बनो मत शांति सुख मोषी[4] ॥13॥

नहीं मैने किया है स्वप्न में भी अन्य नर चिंतन ।
तदपि तुम कर रहे क्यों मुझ निरागस का हृदय कृंतन ।
कभी थे हास्य के लोभी बने आक्रन्द[5] के कामी ।
करो स्वीकार अपनी प्रेयसी को शीघ्र ही स्वामी ॥14॥

परूषता[6] त्याग दो मेरी परीक्षा और अब मत लो ।
करो तुम पूर्ण राजोद्यान में धृत प्रेम के व्रत को ।
शपथ में ले रही हूं धर्म में मेरी अवस्थिति है ।
नहीं मम जात देखो शाल्व कठिना यह परिस्थिति है ॥15॥

तुम्हें ज्यों देखता हूं याद आता भीष्म कृत परिभव[7] ।
नहीं अब सुंदरी स्वीकार करना है तुम्हें संभव ।
प्रणय के क्षेत्र में हे शाल्व सोचो हो तुम्हीं जेता ।
वही वर जो हृदय जीते अवर जो कर हरण लेता ॥16॥

तुम्हीं आगे बढ़े थे प्रिय मुझे कुरू से छुड़ाने को ।
प्रकृत[8] जो धर्म है नर का उसे सत्वर निभाने को ।
अमित विक्रम किया तुमने हमारे सामने सब था ।
बुझा था दीप आशा का वृणित[9] भुजदण्ड जब तव था ॥17॥

तभी तुम कूदकर रथ से हमारे पास जो आती ।
पराजय भूल शीतल शाल्व की होती तभी छाती ।
न मैं हूं विप्र जो है तुष्ट होता दान को लेकर ।
नहीं क्षत्रिय कभी जीता शुभे अपमान को लेकर ॥18॥

1- हृदय की गहराई तक	5. विलाप
2- काशी नरेश की पुत्री अम्बा	6. कठोरता
3- पुराना, पूर्व काल में	7. पराजय
4- चुराने वाला	8. प्राकृतिक, सहज
	9. घायल

विवश जिस भीष्म के पुरत:[1] समागत[2] सब महारथ हों ।
भला कैसे भयातुर बालिका को त्याज्य वह रथ हो ।
लिया जब दान प्राणों का न द्विजता भाव था मन में ।
अपर असु[3] थे जिसे कहते उसी को त्यागते क्षण में ॥19॥

कुलीना कौन कन्या इस तरह है याचना करती ।
प्रणय के पंथ पर वह स्वत: प्रेरित कब चरण धरती ।
बड़े आयास कौशल धैर्य से तुमने पहल की थी ।
न तब आभास था वह प्रेम उथला प्रीति हलकी थी ॥20॥

करो मत अनुकरण दुष्यंत का पर्यंत[4] अवलोको ।
व्यथा स्रोतस्विनी[5] का बाह सकरूण आर्य तुम रोको ।
न पार्थिवता धरो पार्थिव[6] जगत में दिव्य भी कुछ है ।
करो मत घात श्रध्दा का नहीं श्री शक्ति सब कुछ है ॥21॥

पराभव की कथा की स्मारिका सी देवि लगती हो ।
नहीं वह ग्राह्य जिसको देख विषमा व्यथा जगती हो ।
मनुज परिणीत होता है सुखद जीवन बिताने को ।
धरा पर कौन नृप होकर समुत्सुक दुख उठाने को ॥22॥

कहा मैनें पराजय बोध तुमको नृपति गहरा है ।
तुम्हारी भावना पर आज पौरूष दर्प पहरा है ।
सुकन्या उर कमल आमोद मोदित धन्य नर होते ।
अनर्घा[7] प्रीति की आभा समागत दिव्य तुम खोते ॥23॥

कहा हो रूक्ष नृप ने तुम ग्रहीता हो अपर नर की ।
तजो अब कामना मुझसे मनस्वी यशो धन वर की ।
चली जाओ जहां भी है तुम्हारी काशिजा इच्छा ।
नहीं मेरे लिए सम्भव विगत अनुराग की भिक्षा ॥24॥

1. सामने	4. अन्त
2. आये हुए	5. सरिता
3. दूसरा प्राण	6. राजा
	7. अमूल्य

बहुत विश्वास लेकर शाल्व मैं तव पास थी आई ।
नहीं थी स्वप्न में भी तव विमुखता बात मन आई ।
कहां परित्यक्त होकर हे नृपति जाए नृपति जायी ।
जगत ने यह कुरूपा छवि भयावह आज दिखलाई ॥25॥

न तब था भान विष भी गुप्त उर के क्षीर निधि में है ।
न अबला हेतु कोई न्याय नरकृत अखिल विधि में है ।
न दूषण और दूषक है अपावन दूष्य[1] ही होती ।
वही क्यों मात्र संशयदष्ट[2] हो अधिकार सब खोती ॥26॥

नहीं कुछ शेष जीवन में तुम्हारा मौन कहता है ।
नहीं कुछ मूल्य उसका नीर जो दृग छोड़ बहता है ।
सदा ही दोष का भाजन बनाई जगत ने योषा[3] ।
बनाया आज मम जीवन दयित ने ही महादोषा[4] ॥27॥

युवा आवेग प्रेरित जो निभृत[5] द्रुत प्रेम होता है ।
नहीं उससे कभी भी मुग्धबालाक्षेम होता है ।
अलब्धाशीष[6] गुरूजन का ना पाता प्रेम शुभ परिणति[7] ।
विफल अनुरक्ति होकर विकल पाती निम्नगा[8] की गति ॥28॥

अकिंचन थी निराश्रित मैं गयी वन बीच आश्रम में ।
नहीं आयी कभी तनुता[9] नियति के क्रूर विभ्रम में ।
व्यथा सुन होत्रवाहन थे द्रवित ममक्षेमधी[10] नाना ।
अकृतव्रण से किया अनुरोध देकर तर्क भी नाना ॥29॥

किया आश्वस्त भार्गव ने जगी तब चित्त में आषा ।
उभय वे बोल सकते थे श्रुतिस्मृति और बल भाषा ।
नहीं थी कामना अब शाल्व की बस काम्य अरिवध था ।
सकलदुखमूल अपगापुत्र[11]-अन्तक देखना मृध[12] था ॥30॥

1. जिसे दूषित किया जा सके	5. गुप्त, छिपा हुआ	9. क्षीणता
2. शंका से डसी गयी	6. आशीर्वाद प्राप्त न करने वाला	10. मेरे कल्याण की भावना रखने वाला
3. स्त्री	7. परिणाम	11. भीष्म
4. लम्बी रात्रि	8. नदी	12. युद्ध

नहीं जगदग्निसुतविक्रम[1] अमित मम हर सका दुख को ।
सुनिष्चित कौन कर सकता परम हतभाग्य के सुख को ।
किया संकल्प तब दृढ़तर क्षपित[2] मैं ही स्वत: अरि को ।
तपस्या जात बल से व्यसु[3] करूंगी मत्त इस करि[4] को ॥31॥

कभी था देह लतिका को सुखाया उग्र तप करके ।
कभी की प्रार्थना विभु से विलोचन नीर भर भर के ।
कभी थी मांगती सवितासुता[5] से एक ही प्रियवर ।
मुझे दें शक्ति भेजूं भीष्म को तव बंधु[6] के ही घर ॥32॥

तपोरत थी त्रिवेणी पर सदय तब जाह्नवी आयीं ।
कहा तू हो विरत तनुजे पकड़ती व्यर्थ परछायी ।
रही जब मैं अडिग तो कोपवश बोली परूष वाणी ।
बनोगी वक्रगति तनुनीरसरिता[7] धृतप्रखरप्राणी[8] ॥33॥

कहा मैंने तनय के स्नेह प्रेरित आप हैं रूठीं ।
नहीं देवापगे[9] वाणी तुम्हारी हो कभी झूठी ।
सरल थी मैं कुटिलता तो हमारी नियति ने धारी ।
प्रथम ही मैं विरस[10] माता बनूंगी क्या अरस धारी ॥34॥

पटकती शिर शिलाओं पर बही पार्वत्य[11] सरिता सी ।
न आया वेग वह कुछ काम अब निर्जीव जरिता[12] सी ।
अनय नक्रार्दिता[13] वपु यष्टि है प्रतिशोध की ज्वाला ।
बनी है कद्रु[14] धी[15] मेरी उमड़ता है गरल काला ॥35॥

मिला जब जन्म अगला फिर तपस्यालीनता धारी ।
न अंबा थी कभी बहु आपदा के सामने हारी ।
महातप देखते नर क्या सविस्मय देव नभ चारी ।
प्रकट थे आदिकारण विश्व के तब तुष्ट त्रिपुरारी[16] ॥36॥

1. परशुराम	8. हिंसक मकर आदि जल जीवों युक्त	14. कश्यप ऋषि की पत्नी, दक्ष प्रजापति की पुत्री जिससे सूर्य उत्पन्न हुए
2. विनष्ट	9. गंगा	
3. प्राणहीन	10. रसहीन, जलहीन	15. बुद्धि
4. हाथी	11. पर्वत पर उत्पन्न	16. शिवजी
5. यमुना	12. जीर्ण	
6. यमराज	13. अनीति रूपी मकर से पीड़ित	
7. थोड़े जल वाली		

मिला आशीष गजरिपु[1] का भरी जो कामना मन में ।
फलोदय वान होगी और अगले पुत्रि जीवन में ।
रहोगी जन्म से नारी नरोचित देह फिर होगी ।
भरो अब चित्त में आभा बहुत है यातना भोगी ॥37॥

बनीं द्रुपदात्मजा जाकर शिखण्डी किंतु कहलाया ।
सभी थे कार्य पुरूषोचित न कोई जान यह पाया ।
समर विद्या सिखायी द्रोण ने अब मैं महारथ था ।
अभी व्रत पूर्ति थी कुछ दूर चलना कुछ अगम पथ था ॥38॥

नहीं क्या की विडंबित नृप सुता पुरूषत्व कर कल्पित ।
कनकवर्मा[2] दषार्णाधीश[3] से कर बहु मृषा[4] जल्पित[5] ।
स्वयं अनुभूत कर पीड़ा रूके तुम क्या प्रवंचन[6] से ।
न देखा मूल्य जीवन का थमे क्या नाटय मंचन से ॥39॥

तुम्हें अधिगत[7] हुआ पौरूष उधर था देव अभिवंचित ।
अरी अंबा विडम्बन श्रृंखला ही भाग्य तव संचित ।
अमित पुरूषार्थ भी भृगु श्रेष्ठ[8] का क्या हर सका ब्रीड़ा[9] ।
बनीं देहान्तरस्थायी[10] तुम्हारी यह विषम पीड़ा ॥40॥

प्रतीक्षित था चिरन्तन[11] जो मिला है लक्ष्य अब मुझको ।
बना ले काल स्वेच्छा से कभी भी भक्ष्य अब मुझको ।
न जीवन मोह है कुछ भी निरर्थक दौड़ थी यह सब ।
हुआ है ज्ञान अब प्रतिशोध पूरा हो चुका है जब ॥41॥

हुआ संकल्प मेरा पूर्ण यद्यपि घोरतर रण से ।
उठा है भार सा मन से हुआ जो मुक्त हूं प्रण से ।
मरण से काम्य[12] अब मुझको उरिण होना यहां सत्वर[13] ।
नमन शतश: उसे जिसकी कृपा से आज हूं मैं नर ॥42॥

1. शिवजी	7. प्राप्त
2. हिरण्यवर्मा जिनकी पुत्री से शिखण्डी का विवाह हुआ	8. परशुराम
	9. लज्जा
3. दशार्ण देश के राजा	10. जन्मान्तर तक रहने वाली
4. झूठा	11. चिरकाल से
5. बकवास	12. वांछनीय
6. धोखा, छल	13. शीघ्र

किया उपकार जो मुझ पर न विस्मरणीय वह क्षण है ।
सहा है क्लेश बहु ब्रीड़ा न आगत भाव दूषण है ।
हुए अभिशप्त भी हे यक्षवर[1] तुम मात्र मम कारण ।
किया करूणार्द्र हो नि:स्वार्थ मम नारीत्व भी धारण ॥43॥

किया अबलात्व अंगीकृत विषम संकट हरा पर का ।
नियोजित हिंसना में कर रहा हूं गात्र मैं नर का ।
अपरिचितक्षेमहित पुरूषत्व भी तुमने किया अर्पित ।
ग्रहण मैंने इसे करके लिए बस प्राण हो दर्पित ॥44॥

न कुछ भी रोष था मुझ पर न स्वामी पर न जीवन पर ।
किया धारण हरोपम[2] ने धनद[3] अभिशाप का विषधर ।
प्रतीक्षित है नहीं मेरा मरण भी आशुतर तुमको ।
सदाशयसिंधु के पद युग रखा मैंने सदा मन को ॥45॥

कहां वह दिव्यता अनुक्रोश[4] आर्जव[5] अन्यहितचिंतन ।
कहां जीवन समूचा मम ज्वलित प्रतिशोध हव[6] इंधन ।
मिला इतनी तपस्या का मुझे हा क्षुद्र यह प्रतिफल ।
पड़े कुरूक्षेत्र में कुरूवृद्ध[7] दुर्जय बाणचित[8] निश्चल ॥46॥

न कोई यान पाकर गगनचारी भी सतत होकर ।
न महिमावान हो सकता हृदय की उच्चता खोकर ।
न शोभित शौभ[9] से होता न पाकर रत्न सिंहासन ।
न दूषित भाव गोपनक्षम[10] कभी भी चित्र[11] संभाषण ॥47॥

पुन: संप्राप्त नरता[12] पूर्ण स्थूणाकर्ण तुम होगे ।
न अबलावेदना से रह अपरिचित विमुख तुम होगे ।
किया अनुभूत है तुमने कि क्या नारीत्व होता है ।
कुटिल जग में न क्या-क्या यह अनघ[13] सद्भाव खोता है ॥48॥

1. स्थूणाकर्ण नामक यक्ष जिसकी कृपा से षिखण्डी पुरूष बनी
2. शिव के समान
3. कुबेर जो यक्षों के राजा हैं
4. कृपा
5. सरलता, यक्ष
6. यज्ञ
7. भीष्म
8. बाणों से बिधे हुए
9. सौभ नामक विमान का स्वामी शाल्व
10. छिपाने में सक्षम
11. विचित्र
12. मनुष्य का मान
13. निष्पाप

पुरूष जब थे, नहीं तब भी परूषता थी तुम्हारा गुण ।
नहीं अभिव्यक्ति का साधन तुम्हारा मात्र था धनु गुण[1] ।
द्रवित होते न क्षण में अन्यथा तुम राजकन्या पर ।
पिता-माता प्रजा भार्यार्थ विपदा सी अधन्या[2] पर ॥49॥

न जिसके ध्यान में आयी तुम्हारी शुभ्रतम उपकृति[3] ।
अदर्शन[4] मन्द दर्शन[5] मान बैठे ह्री[6] जनित अपकृति[7] ।
नहीं नरवाहिनी[8] कृति पर मुझे कुछ तात विस्मय है ।
नृपति का लक्ष्म[9] ही उत्सेक[10], दि्ववचन, गृहण, कृतभय है ॥50॥

प्रतिषोध बना था जीवन ध्येय हमारा ।
वह भार समर में आज अशेष उतारा ॥
अब हैं मुमूर्षु[11] वे भीष्म पड़े शरशायी ।
रण की परिणति[12] है आज हुई मन भायी ॥51॥

असहाय पड़े अब केवल व्योम निहारो ।
निज सुकृत और दुष्कृत परिमाण विचारो ॥
हर वस्तु जगत की प्राप्य नहीं विक्रम से ।
पीड़ित होता हर मनुज नियति व्युत्क्रम[13] से ॥52॥

काटे दो जीवन लेकर शूल हृदय में ।
जलता अविराम रहा दुस्सह अनुशय[14] में ॥
उपलब्ध आज अभिलषित लक्ष्य जब भारी ।
जब आज पड़ा है भूपर चिर अपकारी[15] ।53॥

जन्मान्तर तृषा अशम्य[16] मात्र क्षण भर में ।
हो गयी शमित पर क्या आया है कर में ॥
जो दुर्वह भार व्यथा का चिर तक ढोया ।
उतरा वह, लेकिन हर्ष कहां है खोया ॥54॥

1. धनुष की प्रत्यंचा	6. लज्जा	11. मरणासन्न
2. हतभाग्य	7. अपकार	12. परिणाम
3. उपकार	8. कुबेर की	13. उलटफेर
4. सम्मुख न आना	9. चिह्न	14. विषाद
5. जिसका ज्ञान धुंधला हो	10. अभिमान, दर्प	15. हानि करने वाला
		16. न बुझने योग्य

सहसा जब रूका रिसाव नितान्त कुव्रण1 का॥
जब है अतीत सब ताप खेद क्षण क्षण का।
आया क्यों उतर अभेद्य शून्य सा मन में।
पाता निज को दिग्भ्रान्त2 विराट विजन में॥55॥

द्युति उठी लीन थी शंपावत3 वह क्षण में।
तब भान हुआ क्या रखा घोरतर प्रण में॥
रोशानल4 में सब सार्थक दग्ध हुआ है।
विस्तीर्ण मरूस्थल ही तो लब्ध हुआ है॥56॥

देती है बस उत्ताप धूम्र बहु काला।
देती न विभा हिंसा की तामस ज्वाला॥
भटका मैं जीवनद्वय बस इसी तिमिर में।
पायी तब सोपधि5 सिद्धि जघन्य समर में॥57॥

क्या इसके लिए भीष्म ही केवल दोषी।
क्या नहीं बना मैं स्वयं सौख्य अवशोषी 6॥
कोई भी हो इस अन्तर्व्रण का कारण।
वर्धित कर धारण किया, किया न निवारण॥58॥

थी ब्रह्मचारिणी मैं भी तो जीवन भर।
तप किया कठिन अन्यों को जो अति दुष्कर॥
पर मिली भीष्म को कीर्ति अनय7 करके भी।
मैं रही तिरष्कृत तिल-तिल कर मरके भी॥59॥

उद्घाटित अब यह भेद हो रहा मन में।
क्यों नहीं सुरभि आयी मेरे उपवन में॥
तुमने हे भीष्म परार्थ सभी सुख त्यागे।
मैंने तो किया सदैव स्वार्थ को आगे॥60॥

1. दूषित घाव	5. छल पूर्ण
2. दिषा बोध से रहित	6. सुखा देने वाला
3. बिजली की भांति	7. अनीति
4. क्रोध की अग्नि	

आए केशव थे पास किया उद्‌बोधित ।
पर यह क्या अब तक जो दुख था अवरोधित ॥
सहसा बनकर जलधार लगा वह बहने ।
कर पकड़ कृष्ण का वीर लगा यह कहने ॥61॥

सरिता थी मुक्त प्रवाह बनी ज्वालामुख ।
था अन्तर दाह निरंतर जाना क्या सुख ॥
सूखा रस सारा सार कहां जीवन में ।
वामी[1] सी वामा[2] बनी जगत उपवन में ॥62॥

जिसमें थे छिद्र अनेक द्‌वेष विषधर[3] था ।
फुंकार मात्र परिसीमित वाणी स्वर था ॥
खोयी मणि को अहि[4] व्यग्र खोजता रहता ।
पद चापों को भी नहीं क्रुद्ध वह सहता ॥63॥

कालीदह सा बन गया अहा मम अन्तर[5] ।
यह तप्त कुण्ड सा रहा सधूम निरन्तर ॥
क्षण-क्षण जिसमें विस्फोट द्‌वेष के होते ।
तनुष्वास[6] हुए सद्भाव लगाते गोते ॥64॥

प्रतिशोध बना था मूलमंत्र जीवन का ।
गूंजा मन मंदिर मैं चिर स्वर क्रन्दन का ॥
बीती दो जीवन बाद निराशा यामा[7] ।
पायी जो उषा अतीव लगी वह क्षामा[8] ॥65॥

ग्रस चुकी मुझे भी प्रतिहिंसना पिशाची ।
आरक्त रक्त से इस हतविधि की प्राची[9] ॥
उत्ताप गया ले सब ऊर्जा जीवन की ।
पाषाण हुआ सब गयी सुमनता[10] मन की ॥66॥

1. वांबी, सांप का निवास	6. उखड़ी हुई सांस वाले
2. स्त्री	7. रात्रि
3. सर्प	8. क्षीण, दुर्बल
4. सर्प	9. पूर्व दिशा
5. हृदय	10. पुष्प का भाव

रवि प्रकटा, पर है विगत शक्ति खिलने की ।
आषा अब नहीं कभी कुछ शम[1] मिलने की ॥
अवलंबित था जो मात्र घृणा पर जीवन ।
क्षण भर में कैसे बने प्रेम का उपवन ॥67॥

भय है कि करेगी अपर लक्ष्य अन्वेषण ।
विगताश्रय[2] घृणा सहज क्या देगी जीवन ॥
पन्नगी[3] घुसी उरविवर मध्य जो गहरी ।
कर रही गरलमय[4] इस जीवन की लहरी ॥68॥

क्या नहीं व्यथा थी सत्य असत्य तृषा थी ।
या तृप्ति मिली अन्ततः वही सुमृषा[5] थी ॥
मैं यह रहस्य कुछ समझ नहीं पाता हूं ।
क्या क्रूर नियति से पुनः छला जाता हूं ॥69॥

शरणागत वत्सल अचिर पतित पावन की ।
गूंजी तव गिरा गभीर भूतभावन की ॥
भास्कर कर[6] वत अज्ञान तिमिर को हरती ।
अभिष्यन्द[7] सुधा का तप्त धरा पर करती ॥70॥

इतने तप से कृत कृत्य मनुज हो जाता ।
लब्धापवर्ग[8] भव बंधन सब खो जाता ॥
होती पुलकित चेतना विभा को पाकर ।
हो जाता द्वंद्वातीत[9] जगत ठुकराकर ॥71॥

पर हरि से भी मांगता मूढ़ बंधन ही ।
रह जाता बनकर मात्र विषय इंधन ही ॥
हो सकता था जो अरणि[10] सुअवसर खोता ।
क्षुद्रान्वेषी[11] रह क्षुद्र अंततः रोता ॥72॥

1. शान्ति	7. प्रवाह
2. आश्रय हीन	8. मुक्ति प्राप्त
3. सर्पिणी	9. राग द्वेष आदि से परे
4. विषपूर्ण	10. यज्ञाग्नि उत्पन्न करने वाली लकड़ी
5. असत्य	11. क्षुद्र वस्तुओं को ही खोजने वाला
6. किरण	

बोला दुरपदात्मज, काम्य[1] जिसे ईश्वर से ।
क्षय शक्ति नहीं नर भिन्न अघाय[2] असुर से ॥
तप भी कर के बन पाया आत्म निहंता ।
बनने को था उत्सुक मैं नियति नियंता ॥73॥

तप है सार्थक उद्देश्य महत हो नर का ।
अन्यथा वही कारण बनता भव[3] डर का ॥
था भार्गव[4] ने बहुवार मुझे समझाया ।
पर मैं थी बनी नितान्त हिंसना छाया ॥74॥

नर वपु धारण करके भी क्या पाया है ।
बस यही सत्य खुलकर समक्ष आया है ॥
विक्रम बल घोषक धरे अद्रि[5] सा अन्तर ।
नर कुचल रहा मृदुता को कहां निरन्तर ॥75॥

बोले हरि प्रेम ममत्व और मृदुता ही ।
करती श्रेष्ठता प्रदान उसे शुचिता ही ॥
सर्जना पूत है वही प्रकृति नारी की ।
है मात्र जिघांसा[6] विकृति अनाचारी की ॥76॥

पर छिनता जब अधिकार सर्जना[7] का ही ।
जब मिलता है आहार वर्जना का ही ॥
तब निज व्यर्थता विलोक रोष में भारी ।
बनती प्रति हिंसा मूर्ति वही मृदु नारी ॥77॥

यह मात्र स्वकीया[8] हानि न वनिता[9] ढोती ।
सर्जना स्वयं खोकर संभावित रोती ॥
बस है प्ररोचना[10] राग[11], लक्ष्य सर्जन है ।
अनुरागलक्ष्य[12] अवशोषक धूर्त कुजन है ॥78॥

1. कामना योग्य	7. सृष्टि, सृजन कर्म
2. पाप मय जीवन	8. अपनी
3. संसार	9. स्त्री
4. परशुराम	10. प्रस्तावना
5. पर्वत	11. प्रेम
6. मारने की इच्छा	12. जिसका लक्ष्य केवल प्रेम ही हो

करना होगा अवगम्य[1] विमूढ़ मनुज को ।
हरना है यदि नि:शेष दुखद भवरूज[2] को ॥
तो उत्स[3] मनुजता का पावन मंगलमय ।
हो पूजित शोभन मुदित विगत शंकाभय ॥79॥

सब कुछ लगता दु:स्वप्न हरे यह क्या है ?
मुझमें सहसा यह जागा भाव नया है ।
प्रतिशोधानल मैं दो-दो जीवन खोए ।
कहकर केशव को पकड़ शिखण्डी रोए ॥80॥

रोला

मिला न कोई स्कंध शीश धर कर रो लेती ।
उर की घन कालिमा अश्रुओं से धो लेती ॥
वय चिर तिमिर निवास अनाश्रय विरति कथा है ॥
अति मर्मांतक कृष्ण सही चिरकाल व्यथा है ॥81॥

मराल

विगत भूलों पर तुमको गहन,
शिखण्डी आज हुआ परिताप ।
नयन फिर पीताम्बर से पोंछ,
कहा हरि ने तुम अब निष्पाप ॥
मानलो इसको बस दु:स्वप्न,
करो मत अम्बे तनु[4] भी शोक ।
अचिर ही पाओ इतर[5] दुराप[6],
मत्कृपा से मम शाश्वत[7] लोक ॥82॥

1. समझने योग्य	4. थोड़ा	7. वैकुण्ठ, स्वर्ग
2. संसार रूपी रोग	5. दूसरे, अन्य को	
3. स्त्रोत	6. कठिनाई से प्राप्त होने वाला	